श्रीमद् भगवद्गीता में 'भक्ति' की अवधारणा

*डॉ. धर्मसिंह गुर्जर

संसार के समस्त प्रसिद्ध ग्रन्थों में श्रीमद्भगवद्गीता का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह महाभारत के भीष्म पर्व में श्रीकृष्ण–अर्जुन संवादरूप में वर्णित 18 अध्यायों का अंश है। इस ग्रन्थ में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये गये आध्यात्मिक उपदेशों का वर्णन है। अनेक प्रसिद्ध आचार्यों ने अपने–अपने दार्शनिक सिद्धान्तों की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिये गीता को आधार ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है। अन्होने गीता में वर्णित गूढ़ तत्वों को जिस प्रकार से समझा वैसे ही अपने सिद्धान्त रूप में प्रस्तुत किया। श्रीमद्भगवद्गीता पर लिखा गया शंकराचार्य जी का भाष्य इन रहस्यमय तत्वों को जानने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ है।

श्रीमद्भगवद्गीता को 'योगशास्त्र' की संज्ञा भी दी गयी है। 'योग' शब्द का सामान्य अर्थ है–मिलन अर्थात् जीवात्मा का परमात्मा से मिलन। अतः जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध का सिद्धान्त ही योग कहलाता है। इस सम्बन्ध को स्थापित करने के लिये गीता में तीन प्रकार में मार्ग बतलाये गये है – (1) कमर्ययोग (2) भक्तियोग (3) ज्ञानयोग। अनेक शास्त्रों में इन तीनों के विशय में पृथक–पृथक बतलाया गया है। किन्तु गीता में इन तीनाहें का एक साथ वर्णन प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म के दो भेद स्वीकार किये गये है– (1) सकाम कर्म (कामना युक्त) और (2) निश्काम कर्म (कामना रहित)। कामनायुक्त कर्मों को करने से मनुश्य जन्म–मरणरूपी बन्धन से मुक्त होकर ईश्वर के सच्चिदानन्दस्वरूप को प्राप्त कर लेता हे। इनमें से केवल निष्काम कर्म को ही श्रेष्ठ बतलाया है। ज्ञानयोग गीता का मुख्य प्रतिपाध विषय है। सम्पूर्ण जगत् को सारहीन और आत्मा को परमात्मा समझना ही ज्ञानयोग है। परमेश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य का भाव मन में न लाना ही भक्तियोग है।

भक्ति :–

'भक्ति' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है– 'भज्' धातु 'क्त' प्रत्यय के योग से 'भक्त' शब्द बनता है। 'भज् सेवायाम्' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' इस पाणिनी के सूत्र से 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से भक्ति शब्द निश्पन्न हुआ है।

शब्दार्थ – कौस्तुभ के अनुसार स्त्रीलिंग 'भक्ति' शब्द के विभाजन, भिन्नता व श्रद्धा आदि अर्थ स्वीकार किये गये है। भक्ति मार्ग से तात्पर्य है– भक्ति का वह साधन जिसके द्वारा ईश्वर की प्राप्ति हो।

आचार्य यास्क कृत 'निरूक्त' में 'साहचर्य' और 'भक्तिनि' इन दो रूपों में भक्ति शब्द का प्रयोग होता है।

'भक्तिसाहचर्यम्' में 'भक्ति' शब्द 'भज्' धातु ति (क्तिन्) प्रत्ययन के योग से बना है। 'ति' प्रत्ययक भाव और कर्म दोनों अर्थो में सम्भव है। अतः इस शब्द की व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है – (प) भजंग सेवनं 'भक्ति' अर्थात् अग्नि आदि के द्वारा लोक आदि का भजन कहलाता है। (पप) भज्यते सेव्यते इति भक्तः अर्थात् जिसका भजन या सेवन किया जाये वह भक्ति है। कुछ लोगों ने 'भजते इति भक्ति' अर्थात् उपभोग करने वाला, यह अर्थ किया है।

'साहचर्यम्' का अर्थ है – साथ–साथ रहना। अब इन दोनों के समास से बने 'भक्ति' शब्द का अर्थ होगा, भक्ति के द्वारा होने वाला साहचर्च भाव – वे वस्तुएँ जो देवताओं के उपयोग में आती है और सदैव उनके साहचर्य में

रहती है।

भक्ति साहित्य में, पुराणों में नौ प्रकार की भक्ति स्वीकार की गयी है–

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् अर्चनं।

वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

भक्ति के स्चरूप तथा लक्षण का निरूपण करते हुए अद्वैत वेदान्त के आचार्य शंकराचार्य कहते हैः–

"स्वात्मतत्त्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगुः।"

अर्थात् कुछ विद्वान लोग स्वयं की आत्मा के अनुसंधान को ही 'भक्ति' कहते हैं।

एक अन्य स्थान पर भी भक्ति के विषय में बतलाया गया है कि परमेश्वर की कृपर से माया रूपी आवरण के हट जाने पर परमतत्त्व की अपरोक्ष अनुभूति होती है और ब्रह्म की प्राप्ति होती है आचार्य शंकर ने मोक्षप्राप्ति के लिये अपनायी गयी तपस्या, साधना व इन्द्रियों का दमन इत्यादि विधियों से अहंभाव उत्पन्न होता है। अतः मोक्षप्राप्ति में बाधा उत्पन्न करने वाले 'अहं' तत्त्व के नाष के लिये ईश्वरीय सत्ता अथवा गुरू के अधीन पूर्ण समर्पण की भावना से युक्त भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ साधन है।

श्रीमद्भगवद्गीता में उपदेश का प्रारम्भ शरणागति से हो होता है। धर्म के विषय में मोहयुक्त हुआ अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में आकर प्रार्थना करता है – मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में आये हुए मेरा मोह दूर कर दीजिये अर्थात् मुझे सदुपदेश प्रदान करे।

भक्ति का सामान्य अर्थ है – भगवान् का स्मरण करना, भजन करना। भक्त के ऊपर भगवान् की कृपर सदैव बनी रहती है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि जिसने अपने अन्तःकरण को मुझमें समर्पित कर दिया है उसका कभी भी नाश नही होता। भक्ति की महत्ता को बतलाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है – तू मूझमें लगे हुए मन वाला हो, केवल मेरा ही भक्त हो, मेरा ही गुणगान करने वला हो और मुझको ही प्रणाम कर। ऐसा करने से तू अपने चित्त को मुझमें समाहित करके मेरे आत्मरूप को प्राप्त कर लेगा। यहाँ पर कहने का यह अभिप्राय है कि मैं सब प्राणियों का परम स्थान हूँ। मेरी शरण में आया हुआ तू मुझ परमेश्वर को ही प्राप्त कर लेगा।

परमात्मा को जानने का व उसकी प्राप्ति का जो मार्ग बतलाया गया है वह भक्तियोग है।

वदान्त के आचार्य रामानुजाचार्य भी भक्ति को मोक्षप्राप्ति में एक महत्वपूर्ण साधन मानते है। ईश्वन भक्ति के द्वारा साधक ईश्वर के प्रेम, करूणा, आदि गुणों का साक्षात्कार कर लेता है। इसके पश्चात् वह स्वयं को परमश्वर को समर्पित कर देता है। ईश्वर के साक्षात्कार के लिये विवेकयुक्त भक्ति आवष्यक है।

भक्ति की महत्ता के विशय में वेदान्ताचार्य मध्वाचार्य ने भी कहा है–

"परमात्मैव भक्त्या दर्षनं प्राप्य मुक्तिं ददाति"

अर्थात् परमात्मा की भक्ति से दर्शन प्राप्त कराकर मोक्ष प्रदान करते है।

परमात्मा की श्रेष्ठता का उचित ज्ञान हो जाने पर उनके प्रति जो गहन श्रद्धाभाव और प्रेम होता है, उसको भक्ति कहते है, जो कि समस्तं सासारिक प्रेम–बन्धनों से श्रेष्ठ है। ईश्वर के प्रति ऐसा गहरा प्रेम जिसका मूलस्रोत ईश्वर के स्वरूपज्ञान की प्राप्ति में हो, वही भक्ति है।

भगवान् श्रीकृष्ण भक्ति की महिमा का गुणगान करते हुए अर्जुन से कहते है – यदि कोई उत्यन्त बुरे आचरण वाला मनष्य भी अनन्य प्रेम से युक्त होकर मेरा भजन करता है, तो उसको भी साधु स्वभाव वाला मानना चाहिए क्योंकि वह शीघ्र ही धार्मिक आचरण वाला हो जाता है और सदैव रहने वाली शान्ति को प्राप्त करता है।

अतः इस अनित्य, सुखरहित मनुष्य लोक को प्राप्त करके मुझ परमात्मा का ही भजन कर।

जिन भक्तों का चित्त मुझ परमात्मा में समाहित है, उनका मैं इस जन्म–मरण युक्त संसार रूपी समुद्र से शीघ्र ही उद्धार कर देता हूँ।

भक्ति का अर्थ उपासना भी किया जाता है। उपासना का अर्थ है – तैलधारावत् निरन्तर भगवान् का स्मरण करना। निरन्तर स्मरण करने से परमात्मा प्रसन्नचित होकर भक्त के समक्ष अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट कर देते है।

श्रीमद्भगवद्गीता में 'अनन्य भक्ति' पर विशेष बल दिया गया है। अनन्य भक्ति से तात्पर्य है – जो परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु में कभी नहीं होती वह अनन्य भक्ति है। अनन्य भक्ति के द्वारा ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है एवं ईश्वर से तादात्म्य की प्राप्ति होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि वह परमात्मा जिससे श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है और सभी कार्यरूप भूत जिमें स्थित है, जिसके अन्तर्गत यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है। ऐसा यह परमात्मा अनन्य भक्ति के द्वारा ही प्राप्त होने योग्य है।

यह अनन्यभाव ही भक्तियोग है। इसको गीता में अनन्यचित्त भी कहा गया है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यषः।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

अर्थात् ऐसा अनन्यचित्त वाला योगी पुरूषः, जिसका चित्त सदैव रात–दिन मेरा ही स्मरण करता है उसकों मैं अनायास ही प्राप्त हो जाता है। यहॉ कहने का अभिप्राय यह है कि अनन्याचित्त वाले मनुष्य के लिये ईश्वर की प्राप्ति दुर्लभ नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते है– जो भक्त अनन्यभाव से युक्त होकर निरन्तर मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते है, मुझमें स्थित उन भक्तों के योगक्षेम की मैं रक्षा करता हूं। यहॉ पर अप्रात्प वस्तु की प्राप्ति का नाम योग है और प्राप्त वस्तु की रक्षा का नाम क्षेम है।

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण से कहता है कि हे प्रभु ! किस प्रकार की भक्ति से आपके दर्शन प्राप्त हो सकते है, तब भगवान् कहते है–

भक्त्या त्वनन्यामा शक्य अहमेवंविधोअर्जुन ।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।।

अर्थात् हे अर्जुन! अनन्य भक्ति के द्वारा ही इस प्रकार के विश्वंरूप वाला मैं जाना जा सकता हूँ, तत्त्व रूप से देखा जा सकता हूँ और प्राप्त भी किया जा सकता हूँ।

जो मनुष्य मुझ परमात्मा के लिये कर्म करने वाला है और जो मेरे परायण है अर्थात् मुझकों ही अपनी परमगति मानने वाला है, और जो मेरी ही भक्ति करता है तथा जो धन, पुत्र, मित्र इत्यादि में स्नेह रहित है, जो सभी प्राणियों में

शत्रुभाव नही रखता, ऐसा जो मेरा भक्त है, वह मुझकों प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में चार प्रकार के भक्तों का वर्णन किया है – (1) आर्त (किसी आपत्ति से युक्त हुआ भक्त), (2) जिज्ञासु (जानने का इच्छुक), (3) अर्थार्थी (धन की इच्छा वाला), (4) ज्ञानी (तत्त्व को जानने वाले)। इन चान प्रकार के भक्तों में ज्ञानी ही श्रेष्ठ है क्योंकि उसकी दृष्टि में अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व नही होता। एकमात्र मुझ परमात्मा में ही उसकी अनन्य भक्ति होती है। इसलिये मैं उसे अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी भी मुझे अत्यन्त प्रिय है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अन्त मे परम अपदेश देते हूए कहा है–

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

अर्थात् समस्त प्रकार के धर्मो को छोड़कर मुझ एक की ही शरण में आ। यहाँ करने का अभिप्राय यह है कि 'मुझे परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही है, मैं ही सर्वस्व हूँ।' ऐसा निश्चय कर।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भक्ति ईश्वर प्राप्ति के लिये एक श्रेष्ठ साधन है। अदि साधक पवित्र ह्रदय वाला होकर अनन्यभाव से युक्त होकर निरन्तर परमात्मा की भक्ति करता है तो परमात्मा उसके समक्ष अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट कर देते है। तत्पश्चात् साधक तात्विक दृष्टि से परमात्मा को जान लेता है और परमात्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त कर लेता है। ऐसा करने से उसको नित्य शान्ति की प्राप्ति होती है। साधक परमात्मा को अद्वैत, अजर, अमर, अभय इत्यादि तत्त्वरूप से जान लेता है तत्पष्चात् वह सांसारिक जन्म–मृत्युरूपी कर्मबन्धनों से मुक्त होकर परमात्मा में प्रविष्ट हो जाता है।

***सह आचार्य**
व्याकरण विभाग
राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय,
बौंली (राज.)

संदर्भ सूची

1. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृष्ठ – 816
2. यास्क : निरूक्तम् 7/3, पृष्ठ – 287
3. शंकराचार्य विवेकचूडामणि, 33 प्रथम चरण
4. विवेकचूडामणि, 32
5. शिष्यस्तेऽहं षाधि मां त्वां प्रशन्नम् ! श्रीमद्भगवद्गीता 2/7
6. न में भक्तः प्रणश्यति। भगवद्गीता 9/31
7. (7) मन्मना भव मद्भक्तों मद्याजी मां नमस्कुरू। मामेवैश्यसि युक्त्वैवमामानं मत्परायणः।। भगवद्गीता 9/34
8. डॉ० महेन्द्र शेखावतः वेदान्त का विकास और स्वरूप पृ0 109